# जब महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के एक शिविर को संबोधित किया....

1934 के दिसंबर महीने में जमनालाल बजाज ने महात्मा गांधी को वर्धा आमंत्रित किया था। गांधी जिस दोमंजिला घर में ठहरे थे, उसके ठीक सामने एक विशाल मैदान था जो जमनालाल बजाज की ही संपत्ति थी। उन दिनों उस मैदान पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) का शीतकालीन शिविर चल रहा था, जिसमें करीब पन्द्रह सौ स्वयंसेवक भाग ले रहे थे। लगभग एक सप्ताह तक महात्मा गांधी ने अपने कमरे से इन स्वयंसेवकों को अथक शारीरिक श्रम करते हुए देखा। उन्होंने देखा कि किस तरह अनुशासित तरीके से इन स्वयंसेवकों ने पूरे मैदान को साफ किया और तंबू लगाते हुए उसे एक विशाल और सुव्यवस्थित शिविर का रूप दे दिया। बताते हैं कि यह सब देखकर महात्मा गांधी को इस शिविर को निकट से देखने की इच्छा उत्पन्न हुई। उन्होंने महादेव देसाई से इसकी व्यवस्था करने को कहा। महादेव देसाई ने संघप्रमुख डॉ हेडगेवार के सहयोगी अप्पाजी जोशी से संपर्क किया और अप्पाजी जोशी ने तुरंत ही महात्मा गांधी को इस शिविर में आमंत्रित भी कर लिया। इस घटना का जिक्र आरएसएस के मुखपत्र 'पाञ्चजन्य' के पूर्व संपादक देवेन्द्र स्वरूप ने अपने एक लेख में किया है।

**भारत-विभाजन के दौरान सांप्रदायिक उन्माद अपने चरम पर था और हर तरफ से खून-खराबे की खबरें आती रहती थीं। हिंदू, मुसलमान और सिखों के औपचारिक संगठन और अनौपचारिक समूह इसमें अपनी भूमिका निभा रहे थे। उसी दौरान महात्मा गांधी के पास आरएसएस के बारे में भी शिकायतें पहुंचने लगीं। महात्मा का स्वभाव था कि वे कान के कच्चे नहीं थे। यानी वे केवल सुनी-सुनाई बातों पर तुरंत यकीन नहीं करते थे। उनकी और एक खासियत थी कि वे अपने धुर-विरोधियों से भी संवाद कायम रखने को तत्पर रहते थे। इसलिए हिंदू महासभा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के बारे में भी वे किसी पूर्वाग्रह से ग्रसित नहीं थे।**

नवंबर 1947 में जब काठियावाड़ से कुछ सांप्रदायिक घटनाओं की खबरे आईं, तो महात्मा गांधी के पास एक ही घटना के दो परस्पर-विरोधी समाचार पहुंचे। तीन दिसंबर, 1947 की प्रार्थना सभा में गांधीजी ने कहा - '....(कांग्रेस के लोगों का कहना है कि) कांग्रेस वाले ऐसा करते ही नहीं हैं, हिंदू महासभा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ वाले ऐसा करते हैं। वे (हिंदू महासभा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ) वाले कहते हैं कि मुसलमानों को कोई नुकसान ही नहीं पहुंचा है। वे कहते हैं कि हमने तो किसी का मकान जलाया ही नहीं है। मैं किसकी बात मानूं? कांग्रेस की या मुसलमानों की या हिंदू महासभा की या राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की? हमारे मुल्क में ऐसा हो गया है कि ठीक-ठीक पता लगाना मुश्किल हो गया है।'

जाहिर है कि गांधी किसी के भी प्रति छूआछूत की भावना से प्रेरित नहीं थे। उन्होंने हमेशा संवाद का रास्ता अपनाया था। हिटलर को चिट्ठी लिखने वाले और मुसोलिनी से इटली जाकर मिल आने वाले गांधी ने सावरकर और गोलवलकर दोनों से संवाद जारी रखा था। शायद यही कारण रहा होगा कि उन्होंने आरएसएस को नए सिरे से देखने-समझने और उसके स्वयंसेवकों से संवाद करने के लिए 13 साल बाद एक बार फिर 16 सितंबर, 1947 को आरएसएस स्वयंसेवकों की एक

**- पिता प्रणव मुखर्जी से बेटी शर्मिष्ठा मुखर्जी की मार्मिक अपील**

सभा में जाने का फैसला किया होगा। गांधी उस दौरान दिल्ली की भंगी बस्ती में रह रहे थे और आरएसएस का कार्यक्रम भी संयोग से वहीं आयोजित किया गया था। अपने संबोधन में महात्मा गांधी ने आरएसएस स्वयंसेवकों को कुछ गहरे संदेश देने की भी कोशिश की थी। यहां महात्मा गांधी ने कहा था - 'बरसों पहले मैं वर्धा में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के एक शिविर में गया था। उस समय इसके संस्थापक श्री हेडगेवार जीवित थे। स्वर्गीय श्री जमनालाल बजाज मुझे शिविर में ले गए थे और वहां मैं उन लोगों का कड़ा अनुशासन, सादगी और छूआछूत की पूर्ण समाप्ति देखकर अत्यंत प्रभावित हुआ था। तब से संघ काफी बढ़ गया है। मैं तो हमेशा से यह मानता आया हूं कि जो भी संस्था सेवा और आत्मत्याग के आदर्श से प्रेरित है, उसकी ताकत बढ़ती ही है। लेकिन सच्चे रूप में उपयोगी होने के लिए त्यागभाव के साथ ध्येय की पवित्रता और सच्चे ज्ञान का संयोजन आवश्यक है। ऐसा त्याग, जिसमें इन दो चीजों का अभाव हो, समाज के लिए अनर्थकारी सिद्ध हुआ है।

सभा में महात्मा गांधी का स्वागत करते हुए आरएसएस के एक नेता ने उन्हें 'हिंदू धर्म में पैदा हुए एक महान व्यक्ति' बताया था। महात्मा गांधी ने इसपर आरएसएस कार्यकर्ताओं को अपने अर्थों वाले हिंदू धर्म का सार बताते हुए कहा - 'मैं यह दावा करता हूं कि मैं सनातनी हिंदू हूं। मैं 'सनातन' का मूल अर्थ लेता हूं। हिंदू शब्द का सही-सही मूल क्या है, यह कोई नहीं जानता। यह नाम हमें दूसरों ने दिया और हमने उसे अपने स्वभाव के अनुसार अपना लिया। हिंदू धर्म ने दुनिया के सभी धर्मों की अच्छी बातें अपना ली हैं और इसलिए इस अर्थ में यह कोई वर्जनशील धर्म नहीं है। इसलिए इसका इस्लाम धर्म या उसके अनुयायियों के साथ ऐसा कोई झगड़ा नहीं हो सकता, जैसा कि आज दुर्भाग्यवश हो रहा है।'

**'अगर हिंदू यह समझें कि हिंदुस्तान में हिंदुओं के सिवाय अन्य किसी के लिए कोई जगह नहीं है और यदि गैर-हिंदू, खासकर मुसलमान, यहां रहना चाहते हैं तो उन्हें हिंदुओं का गुलाम बनकर रहना होगा, तो वे हिंदू धर्म का नाश करेंगे। और इसी तरह यदि पाकिस्तान यह माने कि वहां सिर्फ मुसलमानों के लिए ही जगह है और गैर-मुसलमानों को वहां गुलाम बनकर रहना होगा, तो इससे हिंदुस्तान में इस्लाम का नामोनिशान मिट जाएगा।'**

महात्मा गांधी ने आगे कहा - 'कुछ दिन पहले ही आपके गुरुजी (एमएस गोलवलकर) से मेरी मुलाकात हुई थी। मैंने उन्हें बताया था कि कलकत्ता और दिल्ली में संघ के बारे में क्या-क्या शिकायतें मेरे पास आईं थीं। गुरुजी ने मुझे आश्वासन दिया कि यद्यपि वे संघ के प्रत्येक सदस्य के उचित आचरण की जिम्मेदारी नहीं ले सकते, फिर भी संघ की नीति हिंदुओं और हिंदू धर्म की सेवा करना मात्र है और वह भी किसी दूसरे को नुकसान पहुंचाकर नहीं। संघ आक्रमण में विश्वास नहीं रखता। अहिंसा में उसका विश्वास नहीं है। वह आत्म-रक्षा का कौशल सिखाता है। प्रतिशोध लेना उसने कभी नहीं सिखाया।'

दरअसल कुछ दिन पहले ही महात्मा गांधी और डॉ दिनशॉ मेहता की मुलाकात गोलवलकर से हुई थी। उस बातचीत के बारे में 12 सितंबर, 1947 की प्रार्थना सभा में गांधीजी ने कहा था - 'मैंने सुना था कि इस संस्था (राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ) के हाथ भी खून से सने हुए हैं। गुरुजी ने मुझे आश्वासन दिलाया कि यह बात झूठ है। उनकी संस्था किसी की दुश्मन नहीं है। उसका उद्देश्य मुसलमानों की हत्या करना नहीं है। वह तो सिर्फ अपनी सामर्थ्य-भर हिंदुस्तान की रक्षा करना चाहती है। उसका उद्देश्य शांति बनाए रखना है। गुरुजी ने मुझसे कहा कि मैं उनके विचारों को प्रकाशित कर दूं।' बाद में इस बातचीत को महात्मा गांधी ने हरिजन में प्रकाशित भी किया था।

**जो भी हो, तब हिंदू महासभा और आरएसएस की लोकप्रिय छवि मुसलमान-विरोधी ही बन चुकी थी। और हिंदू धर्म का उसका अर्थ भी राजनीतिक स्वरूप ले चुका था। हिंदुस्तान का केवल हिंदुओं के देश होने के आग्रह का भी वह शिकार हो चुका था। जबकि दूसरी ओर महात्मा गांधी समावेशी और सह-अस्तित्व वाले हिंदू धर्म की बात कर रहे थे। वे 'हिंदुस्तान केवल हिंदुओं के लिए' वाले विचार की भी खुलकर आलोचना कर रहे थे। इसलिए वे भी महासभा और संघ के निशाने पर आ चुके थे।**

16 सितंबर वाली आरएसएस की सभा में गांधीजी ने फिर से हिंदू धर्म पर अपना वह विचार दोहराते हुए कहा था - 'मुझसे कहा जाता है कि आप मुसलमानों के दोस्त हैं और हिंदुओं और सिखों के दुश्मन। यह सत्य है कि मैं मुसलमानों का दोस्त हूं, जैसा कि मैं पारसियों और अन्य लोगों का हूं। ऐसा तो मैं बारह वर्ष की उम्र से ही हूं। लेकिन जो मुझे हिंदुओं और सिखों का दुश्मन कहते हैं, वे मुझे पहचानते नहीं। मैं किसी का भी दुश्मन नहीं हो सकता। हिंदुओं और सिखों का तो बिल्कुल ही नहीं।'

इस भाषण के बाद गांधीजी ने आरएसएस स्वयंसेवकों से सवाल पूछने को कहा। एक स्वयंसेवक ने पूछा - 'हिंदू धर्म में पापी को मारने की इजाजत है या नहीं? यदि नहीं तो गीता के दूसरे अध्याय में भगवान कृष्ण कौरवों का नाश करने के लिए जो उपदेश देते हैं उसकी व्याख्या आप किस तरह करेंगे?'

पहले प्रश्न के उत्तर में गांधीजी ने कहा - 'इजाजत है भी और नहीं भी है। किसी को मारने का प्रश्न उठे, उससे पहले हमें अचूक तौर पर यह फैसला करना होगा कि पापी है कौन। दूसरे शब्दों में हमें पहले अपने आप को बिल्कुल दोषरहित बनाना होगा। तभी हमें यह फैसला करने का अधिकार प्राप्त होगा। जो खुद पापी है वह दूसरे पापी को सजा देने या उसके बारे में निर्णय करने का अधिकारी कैसे बन सकता है?' उन्होंने आगे कहा - 'जहां तक दूसरे प्रश्न का संबंध है, पापी को सजा देने के अधिकार की जो बात गीता में कही गई है उसका प्रयोग तो केवल सही तरीके से गठित सरकार ही कर सकती है। अगर आप खुद ही फैसला करें और खुद ही सजा देने लगें तो सरदार (पटेल) और पंडित नेहरू, दोनों विवश हो जाएंगे। दोनों देश के माने हुए सेवक हैं। उन्हें अपनी सेवा करने का अवसर दीजिए। कानून को अपने हाथ में लेकर आप उनके प्रयत्नों में बाधा न डालें।'

15 नवंबर, 1947 को अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की बैठक में गांधीजी ने इसी बात को दोहराते हुए कहा था - '....मैं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के बारे में बहुत सी बातें सुनता हूं। मैंने ऐसा भी सुना है कि इस सारी शरारत के पीछे संघ है। हमें भूलना नहीं चाहिए कि लोकमत में हजारों तलवारों से भी ज्यादा प्रबल शक्ति है। हिंदू धर्म की रक्षा रक्तपात और हत्याओं से नहीं हो सकती। अब आप स्वतंत्र हैं। आपको यह आजादी कायम रखनी है। ऐसा आप तभी कर सकते हैं जब आपमें इंसानियत हो, आप बहादुर हों और सदा जागरूक रहें। वरना एक दिन आएगा जब आप अपनी उस गलती पर पछताएंगे। जिसके कारण यह सुंदर पुरस्कार आपके हाथ से निकल जाएगा। मैं आशा करता हूं कि ऐसा दिन कभी नहीं आएगा।'

ठीक अगले दिन 16 नवंबर, 1947 की प्रार्थना सभा में गांधीजी ने कहा - 'हिंदू महासभा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के बारे में मुझे जो कहना पड़ा है, उसका मुझे दुःख है। मुझे अपनी गलती जानकर खुशी होगी। मैं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के मुखिया से मिला हूं। मैं इस संघ की एक बैठक में शामिल हुआ था, तबसे मुझे उसकी बैठक में जाने के लिए डांटा जाता रहा है और मेरे पास राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के बारे में शिकायतों के कई खत आए हैं।'

**सांप्रदायिक दंगों को रोकने के लिए और शांति कायम करने के लिए 13 जनवरी, 1948 को महात्मा गांधी ने उपवास की घोषणा कर दी थी। छह दिन बीतते-बीतते उनके पेट में तेज दर्द होना शुरू हो गया। 18 जनवरी को देश के विभिन्न संगठनों जिनमें हिंदू, मुसलमान और सिखों के संगठन भी शामिल थे, के सौ से अधिक प्रतिनिधियों ने गांधीजी की सभी सातों शर्तों को मानते हुए सांप्रदायिक सौहार्द्र स्थापित करनेवाले एक घोषणापत्र पर हस्ताक्षर किया। इनमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रतिनिधि भी शामिल थे। बिस्तर पर लेटे-लेटे ही माइक के जरिए अपने संदेश में गांधीजी ने कहा - 'मेरी प्रतिज्ञा पूरी होने में जितना समय लगने की आशा थी वह दिल्ली के नागरिकों, जिनमें हिंदू महासभा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के नेता भी सम्मिलित हैं,की सद्भावना के कारण उससे पहले ही पूरी हो गई।'**

यानी अपने निधन से मात्र 12 दिन पहले तक महात्मा गांधी हिंदू महासभा और आरएसएस के प्रति अपने तमाम आग्रहों को एक किनारे रखने को तैयार थे। वे इन दोनों संगठनों की सदाशयता पर एकतरफा विश्वास करने को तैयार थे। उन्हें लगता था कि इन संगठनों को भारत की बहुलतावादी आत्मा और राष्ट्रीय हितों के अनुरूप संस्कारित किया जा सकता है। कुछ लोग इसे महात्मा गांधी का भोलापन कह सकते हैं। कुछ इसे गांधी की अदूरदर्शिता भी कह सकते हैं। कुछ लोग इसे गांधी की अतिरेकपूर्ण उदारता भी कह सकते हैं। ऐसे लोगों को गांधी का वह पूरा भाषण पढ़ना चाहिए जो उन्होंने आरएसस की सभा में दिया था। आरएसएस की उस सभा में महात्मा गांधी ने जो सबसे महत्वपूर्ण बात कही थी वह यह थी - 'संघ एक सुसंगठित, अनुशासित संस्था है। उसकी शक्ति भारत के हित में या उसके खिलाफ प्रयोग की जा सकती है। संघ के खिलाफ जो आरोप लगाए जाते हैं, उनमें कोई सच्चाई है या नहीं, यह मैं नहीं जानता। यह संघ का काम है कि वह अपने सुसंगत कामों से इन आरोपों को झूठा साबित कर दे।'

**उस दौरान महात्मा गांधी के सचिव रहे प्यारेलाल ने अपनी पुस्तक 'महात्मा गांधी: द लास्ट फेज' में उस दौरान का एक प्रसंग लिखा है - 'गांधीजी के साथ रहनेवाले लोगों में से ही किसी ने कहा कि आरएसएस के लोगों ने 'वाह शरणार्थी शिविर' (एक हिंदू और सिख शरणार्थी शिविर) में बहुत ही अच्छा काम किया है। उन्होंने वहां अनुशासन, साहस और कठिन परिश्रम से कार्य करने की क्षमता का परिचय दिया है। इस पर गांधीजी ने बीच में ही टोकते हुए कहा-'लेकिन भूलो मत, हिटलर के नाज़ी और मुसोलिनी के अधीन फासीवादियों में भी ऐसा ही अनुशासन, साहस और ऐसी ही कार्यक्षमता थी।'** प्यारेलाल ने लिखा है कि उस बातचीत में महात्मा गांधी ने आरएसएस को 'सर्वाधिकारवादी दृष्टिकोण वाले सांप्रादायिक संगठन' की संज्ञा दी थी।'

## सावरकर हरामखोर है - चंद्रशेखर आज़ाद

भगत सिंह और अन्य साथियों की गिरफ्तारी के बाद पार्टी की स्थिति कमजोर हो गई थी, दल के पास पैसे का भी संकट था, ऐसे में चन्द्रशेखर आजाद ने आर्थिक मदद की आशा में उन्हे (यशपाल) को सावरकर के पास पूना भेजा।

यशपाल ने लिखा है कि जब वह उनके निवास स्थान पर पहुंचे तो उन्हे ढाई घंटे इन्तजार करना पड़ा क्योंकि सावरकर अन्दर पूजा में व्यस्त थे। जब वह पूजा करके बाहर निकले तो यशपाल ने अपना परिचय देते हुये आजाद का संदेश दिया। यशपाल के अनुसार कुछ विचारकर कहा कि अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई मे मै आप लोगों की कोई मदद नहीं कर सकता, हां ! अगर तुम लोग मोहम्मद अली जिन्ना को मार देने का वादा करो तो हम तुम् लोगों के लिये एक के बजाय तीन विदेशी रिवाल्वर दे सकते हैं। जब यशपाल ने लौटकर यह वृतांत आजाद को सुनाया तो पंडित जी ने गाली देते हुये कहा कि "हम क्रान्तिकारी हैं और इस हरामखोर नें हमे किराये का हत्यारा समझ रखा है।"

**सावरकर सम्बंधित इस घटना का उल्लेख भगतसिंह के क्रन्तिकारी साथी और प्रसिद्ध उपन्यासकार यशपाल ने अपनी पुस्तक आत्मकथा "सिंहावलोकन" (1952) में किया है।**

## राजकिशोर जी नहीं रहे

### हिंदी पत्रकारिता में विचार की जगह आज और छीज गई

**ओम थानवी**

पिछले महीने जब मैं उनसे मिलने गया, वे पत्नी विमलाजी को ढाढ़स बँधा रहे थे। लेकिन लगता था खुद भीतर से कम विचलित न रहे होंगे। मेरे आग्रह पर राजस्थान पत्रिका के लिए वे कुछ सहयोग करने लगे थे। एक मेल में लिखा - "दुख को कब तक अपने ऊपर भारी पड़ने दिया जाये।" फिर जल्द दूसरी मेल- "तबीयत ठीक नहीं रहती। शरीर श्लथ और दिमाग अनुर्वर। फिर भी आप का दिया हुआ काम टाल नहीं सकता। आज हाथ लगा रहा हूँ।"

लेकिन होना कुछ बुरा ही था। फेफड़ों में संक्रमण था। कैलाश अस्पताल होते एम्स ले जाना पड़ा। आइसीयू में देखा तो अचेत थे। कई दिन वैसे ही रहे। तड़के उनकी बहादुर बेटी ने बताया डॉक्टर कह रहे हैं कभी भी कुछ हो सकता है; कुछ घंटे या दो-तीन रोज़ ... और दो घंटे बाद वे चले गए। फ़ोन पर मुझसे कुछ कहते नहीं बना। परिवार पर दूसरा वज्रपात हुआ है। ईश्वर उन्हें इसे सहन कराए।

मेरा परिचय उनसे तबका था जब सत्तर के दशक में बीकानेर में शौकिया पत्रकारिता शुरू की थी। वे कलकत्ता में 'रविवार' में थे। तार भेजकर मुझसे लिखवाते थे। फिर जब मैं राजस्थान पत्रिका समूह के साप्ताहिक 'इतवारी पत्रिका' का काम देखने लगा, उन्होंने हमारे लिए नियमित रूप से 'परत-दर-परत' स्तम्भ लिखा जो बरसों चला। 'जनसत्ता' के भी वे नियमित लेखक रहे।

उन्होंने 'परिवर्तन', 'दूसरा शनिवार', (ऑनलाइन) 'हिंदी समय' और हाल में नए 'रविवार' का सम्पादन किया। नवभारत टाइम्स में भी रहे। उनकी किताबें हैं - पत्रकारिता के पहलू, पत्रकारिता के परिप्रेक्ष्य, धर्म, सांप्रदायिकता और राजनीति, एक अहिंदू का घोषणापत्र, जाति कौन तोड़ेगा, रोशनी इधर है, सोचो तो संभव है, स्त्री-पुरुष = कुछ पुनर्विचार, स्त्रीत्व का उत्सव, गांधी मेरे भीतर। समकालीन मुद्दों और समस्याओं पर उन्होंने 'आज के प्रश्न' शृंखला में कोई पच्चीस किताबों का सम्पादन भी किया। उनके दो उपन्यास और एक कविता संग्रह भी प्रकाशित हुए।

राजकिशोरजी ही नहीं गए, उनके साथ हमारा काफ़ी कुछ चला गया है। जो लिखा हुआ छोड़ गए हैं, उसकी क़ीमत अब ज़्यादा समझ आती है।